ISSN: 2393-8900 IMPACT FACTOR : 1.9152(UIF) VOLUME - 4 | ISSUE - 7 | MARCH - 2018

HISTORICITY RESEARCH JOURNAL

'जैन संत काव्यों' में निहित जीवन तत्वों का अन्वेषण

डॉ. श्रीधर पी. डी.
विभागाध्यक्ष्य - हिन्दी विभाग,
क्रिस्तु जयन्ती कालेज, के. नारायणपुरा, कोत्तनूर पोस्ट, बेंगलूरु.

जैन धर्म के संत कवियों ने जीवन के तत्वों को दो प्रकारों में देखा हैं। एक जैन पुराणों के आधार पर और दूसरा जैन आगम ग्रंथों के अनुसार। जैन साहित्य को दो प्रकारों में बांटा जा सकता है। एक, जैन तीर्थंकरों की जीवन गाथाएं और दूसरा जैन तीर्थंकरों द्वारा बोधित आगम ज्ञान। तीर्थंकरों का मोक्ष मार्ग दर्शाने वाले उनकी जीवन गाथा हो अथवा आगे आगम शास्त्रों में उनके तत्वों में भी समाज में दो प्रकार के आचरण – नियमों का विश्लेषण किया गया है। अहिंसा को मूल तत्व मानने वाले जैन संत, आचार्य, मुनिपरंपरा के लिए अथवा साधु चरिया के लिए अत्यंत कठिन नियम बनाए गए हैं। सामान्य मानव को समाज में शांतिपूर्ण, अहिंसात्मक सहज जीवन करने के लिए श्रावक धर्म का नीति नियम स्थापित किए गए हैं। इसका अर्थ यह है कि जैन धर्म में संत बनना अत्यंत कठिन कार्य है। उसी तरह सामान्य व्यक्ति को भी जैन धर्म में अपने आप को नियमों बंधे रहना भी अत्यंत कठिन है। मानव की जिज्ञासा, प्रकृति, मानव और उनके धर्म में लिप्त होते हैं। सुविचार के साथ धर्म परिपालन करते हुए मनुष्यत्व को दिखाना ही समाज में सच्चारित्र माना जाता है। इसी को जीवन में अनुशासन कहते हैं। धर्म के क्षेत्र में संघ है तो अनुशासन है। उसी संघ को समाज के रूप में हम देख सकते हैं। समाज का अर्थ है अनुशासन या अनुशासन का अर्थ समाज है। जीवन के लिए प्रकृति में सब समान है। प्रकृति के नियम सब पर समान लागू होते हैं। संघ अथवा समाज में बनाए गए नियम सिर्फ मनुष्यों पर ही लागू होते हैं। इन्हीं नियमों को अपने हित अनुसार बदल कर लागू करना धर्म के नियम हो सकते हैं। कहीं भी प्रकृति हो मानव हो या समाज हो नियमों को तोड़ना गलत समझा जाता है। नियमों को तोड़ने से अशांति, क्रोध और हिंसा प्रकृति जागृत हो जाते हैं। मगर अनुशासित व्यक्ति सुशीलता के साथ अपने जीवन में स्थिर मन से सुरक्षित रहता है। अनुशासन दूसरों की स्वतंत्रता को हरण करने के लिए कभी नहीं होता। अनुशासन के नियमों में बंध कर परतंत्र जीवन जीना पड़े तो उनमें प्रतिशोध, हिंसा, आतंक और भय जैसे प्रतिक्रियाएं एवं भावनाएं जन्म लेने लगते हैं।

जैन धर्म में अनुशासन का स्वरूप इच्छा का विरोध करना है। मन, वचन और काय तीनों तत्वों में मनुष्य को संयमी बने रहना है। अपने पंच इंद्रियों को उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिए मनुष्य प्रयत्न करने लगता है तो, मन में विकार उत्पन्न होने लगते हैं। पंच इंद्रियों की इच्छापूर्ति की लोलुपता ही मानव के चरित्र का अध:पतन है। क्षणिक शांति या संतोष के लिए हम अपने इंद्रियों को खुश करने लगते हैं। तब जीवन के शाश्वत परमानंद को भूल कर क्षण-क्षण में अल्प अतृप्त आत्मा के साथ नाटकीय जीवन चलाने लगते हैं।

इसी असमंजस स्थिति से बाहर निकलकर एक श्रेष्ठ सुखी जीवन जीने के लिए जैनाचार्यों ने जीवन में धर्म नामक विषय को प्रमुखता से व्याख्यानित किए हैं। इन आचार्यों का अभिप्राय में 'स्व आत्म कल्याण ही शांत सुखी जीवन' का मूल तत्त्व है। इसके लिए कठिणतर नियमों का पालन करना ही है। इन्हीं नियामें के बंधनों को दो विभागों में बॉ टकर साधु मुनियों के लिए मुनिधर्म और सामान्य संसारी बनकर समाज में जीवन यापन करने वाले मानव के लिए श्रावक धर्म का नाम दिए गए हैं। इन्हीं नियमों को धर्म का बाना पहनाकर अनेक जैन संतों ने जैन जीवन कला का विश्लेषण किया हैं।

जैन संतों के अनुसार धर्म की परिभाषाएँ-

आचार्य कुंदकुंद- जैन धर्म के जीवन कौशल को अपने 'प्रवचनसार' ग्रंथ में "चरित्तं खलु धम्मो' कहा है, यानी अपने चरित्र को ही 'वास्तविक धर्म' कहा है।

'बोध पाहुड' ग्रंथ में "धम्मो दयाविसुद्धो" यानी दया का विशुद्ध परिणाम ही धर्म कहा गया है।

'सर्वार्थ सिद्धि' ग्रंथ में आचार्य पूज्यपाद "इष्टस्थाने धत्ते स धर्मः" यानी जो इष्ट स्थान को देता है, उसे धर्म कहा है।

'अकलंक आचार्य' ने अपने 'राजवार्तिक' ग्रंथ में "नरेन्द्र मुनीन्द्रादिरूपे इष्ट स्थाने धत्ते स धर्मः" यानी जो नरेन्द्र मुनीन्द्रादि को इष्ट स्थान में धारण कराता है, वह धर्म है।

'कणाद आचार्य' अपने 'वैशेषिक सूत्र' में "यतोभ्युदयनिश्रेयस सिद्धि: धर्मः" कहा है।

आचार्य कार्तिकेय ने "धम्मो वत्थुसहावो" वस्तु स्वरूप को धर्म कहा है।

इन सभी आचार्य और और संत मिलकर जैन परंपरा में दस धर्मों का नियम बनाकर परिपालन करने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। उनके कहे हुए धर्म की परिभाषा इस प्रकार है। जैसे-

"उत्तमा क्षमा मार्दवार्जव-शौच-संयम-तपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि दश लाक्षिणिको धर्मः" [1]

कवि राज सिंह द्वारा लिखित जीनदत्त चरित्र ग्रंथ में एक श्लोक आता है। जैसे- "संवत् तरहमे चउवझणे भादव सुदि पंचमी गुरु दिण्णे" - आजकल के जैसे ही हजारों साल पहले से जैन संतों ने जीवन के लिए आवश्यक दश धर्मों का वर्णन किया है। उसमें आत्म चिंतन, उपवास, शास्त्र, स्वाध्याय आदि कार्यों का उल्लेख किया है। सामान्य मानव के लिए नीति नियमों को पालन करने हेतु दश लक्षण पर्व नामक त्योहार को निर्धारित किया गया है।[2] यह पर्व हर साल भाद्रपद शुक्ल पंचमी के दिन से प्रारम्भ होकर प्रतिदिन एक-एक धर्म के महत्व को जीवन कौशल को पर्व के रूप में आचरण में लाकर सत्य और अहिंसा का परिपालन करते हुए, संत समाज में रहनेवाले सभी को उपदेश करते हैं।

'धारणात् इति धर्मः' और 'वस्तु सहावो धम्मो' इन वाक्यों का अर्थ जिसको धारण किया जाता है वही धर्म है और वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। धर्म विश्व का धारक है और वह सभी ज्ञानों का धारण और रक्षा करता है। इसीलिए धर्म का धारण करने के लिए कहा जाता है। महाभारत में "धारणात् धर्मम् इत्यादुः। धर्म धारयते प्रज्ञा। यत् एयादारण संयुक्त स धर्म इति निश्चयः।" धारण करने से लोग इसे धर्म कहते हैं। जीवन के सभी मूल्य धर्म पर आधारित है। धर्म रहित कोई मूल्य नहीं हो सकता, जो धर्म रहित है वह अधर्म है। धर्म एक शाश्वत सत्य है, जिसका प्रभाव युगों से चलता आ रहा है।[3] युग की परिस्थितियों के कारण धर्म के बाह्य स्वरूप तथा प्रतीकों में भले ही परिवर्तन आ जाए, परंतु आंतरिक तत्व स्थिर रहता है। धर्म मनुष्य के अंदर की एक ऐसी प्रेरणा, भावना, प्रवृत्ति एवं विधि व्यवस्था है जो मानव की संपूर्ण जीवन को उन्नती प्रदान करता है। धर्म सृष्टि का प्राण तत्व है। धर्म के अभाव में सृष्टि की पहचान हो ही नहीं सकती। धर्म प्राणी मात्र के कल्याण की कामना करता है। धर्म का कहना है –

"सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतुनिरामया"।

सब सुखी रहे सब का कल्याण हो और जिससे लोक में अभ्युदय और परम कल्याण की प्राप्ति हो वही धर्म है। अनेक जैन आचार्यों ने दश धर्म क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य को सुव्यवस्थित रुप से विश्लेषित किया है। जैन आचार्यों ने धर्म को व्यक्ति-समाज-विश्व के दैनिक क्रियाकलापों में स्थित माना है। अगर धर्म नहीं होता तो अपराध, अनाचार, भ्रष्टाचार, दुराचार, स्वार्थता, अहंकार, नीचता, प्रतिष्ठा जैसे असहकारी असहनीय क्रियाओं में मानव अपने को दिशाहीन देखता। धर्म के सागर में भिन्न-भिन्न संप्रदाय और उनके अच्छे विचार नदियों के रूप में विलीन हो जाते हैं। धर्म के धरातल पर आत्म कल्याण की साधना कर सकते हैं। श्रेष्ठ समाज या देश निर्माण के लिए विकृत विचारवृत्ति से दूर रहना अनिवार्य है। धर्म की गरिमाऔर महिमा को अपनाकर तुच्छ वैयक्तिक कामनाओं को दबाकर मानव धर्म को अपनाकर कल्याण की ओर अग्रसर होना सबके लिए अच्छी बात है। इससे पूरे संसार में शांति सुख सहज ही प्राप्त होते हैं।

जैन आचार्य जीवन के कौशलों को परिपालन करने के लिए धर्म को ही निर्धारित मानते थे। प्रतिपादित धर्म या अनिवार्य जीवन शैली को हम नियम या धर्म के रूप में उनके उपदेशों में देख सकते हैं। "क्षमा वीरस्य भूषणम्" – जिसका अर्थ जो वीर ही वही क्षमा कर सकता है। कायर अपनी गलती छिपाने हेतु संघर्ष की ओर चला जाता है। वह बिना कारण क्रोध को अपने मन में पनपने के लिए जगह देता है। जैन संतों ने क्षमा गुण को उत्तम क्षमा की संज्ञा प्रदान करते हैं।

जैन संतों द्वारा 10 धर्मों का सविस्तार विश्लेषण किया गया है। जैसे क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य आदि।

क्षमाधर्म- इस क्षमा धर्म को धारण करना बहुत ही आसान है, क्योंकि आत्मा का स्वाभाविक धर्म ही क्षमा है। किसी भी प्राणी को कष्ट ना पहुंचाना, किसी अप्रिय अनचाही घटनाओं पर क्रोध न करना ही क्षमा गुण है। क्षामाहीन मनुष्य को हम समाज में रागीद्वेषी, क्रोधी, विद्रोही आदि कुनामों से पहचाना जाता है। क्षमा हीनता का मूल कारण क्रोध है। क्रोध मनुष्य को अंधा बना देता है। वह उचित-अनुचित, अच्छा-बुरा, सही-गलत, सत्य-असत्य को नहीं पहचान सकता है।

सर्वार्थ सिद्धि ग्रंथ में आचार्य पूज्यपाद स्वामी उत्तम क्षमा का स्वरूप कहते हुए – "क्रोध को त्याग कर अपने स्वरूप में स्थिर होना ही क्षमा मानते हैं"।

संत एकनाथ कहते हैं कि – "कोकिलानां स्वरोरूपं, नारीरूपं पतिव्रता, विद्यारूपं कुरुपाणां, क्षमा रूपं तपस्वीनम्"। अर्थात् कोयल के लिए स्वर, नारी के लिए पतिव्रता, कुरूपि के लिए विद्या और साधु या तपस्वी के लिए क्षमा को अनिवार्य धर्म कहते हैं।

क्षमा के विषय में पंडित आशाधार अपने अनगार धर्मामृत ग्रंथ में कहते हैं कि-

"य: क्षाम्यति क्षमोप्याशु प्रतिकर्तुंकृतागस: ।
कृतागसं तमिच्छंति क्षान्तिपीयूषसंजुष: "।।[4]

अपने प्रति अपराध करने वालों का शीघ्र प्रतिकार करने में समर्थ होते हुए भी जो व्यक्ति उन अपराधियों के प्रति क्षमा धारण करता है, उसको साधुगुणी वीर कहा जाता है।

मार्दव धर्म – मानसिक कोमलता ही मार्दव धर्म है। मार्दव का अर्थ अभिमान को नाश करना है। धर्म का अर्थ दया सहित विशुद्ध होना है दया दिखाना ही सद्धर्म कहा गया है। इन सबका अर्थ है- जहाँ कोमल परिणाम, स्वभाव नहीं होंगे, मृदुता नहीं होगी वहाँ तीर्थयात्रा, व्रत, नियम, ध्यान आदि करना निरर्थक हैं। मान का मर्दन करनेवाला 'मार्दव धर्म' है।

आर्जव धर्म- आर्जव का अर्थ है सरलता, ईमानदारी, स्पष्टता, निष्कपटता, उदार हृदय का होना, मायाचार न करना। जीवन में ईमानदारी ही श्रेष्ठ नीति है। आचार्य कुंदकुंद अपनी रचना'बारस अणुवेक्खा' में कहते हैं कि-

"मोत्तूण कुडिलभावं, णिम्मलहिदएण चरदि जो समणो।
अज्जवधम्मं तइयो, तस्स दु संभवदि णियमेण।।[5]

इसका अर्थ – जो श्रमण मुनि कुटिल भाव को छोड़कर निर्मल हृदय से आचरण करता है, चारित्र का पालन करता है, उसको नियम से दस धर्मों में तृतीय आर्जव धर्म होता है। उसी मानव के सरल भाव को ही 'आर्जव धर्म' कहते हैं।

शौच धर्म – "शुचेर्भाव: शौचम्" – इसका अर्थ पवित्रता, स्वच्छता, शुद्ध होना, निर्मल होना, निर्लोभ होना। 'भगवती आराधना' में आचार्य 'प्रवर शिवार्य' कहते हैं कि – "द्रव्येषु ममेदं भावमूलो व्यसनोपनिपात: सकल इति तत: परित्यागो लाघवं" - धन, धाम, दारा आदि मेरी वस्तुएँ हैं ऐसे इन पर ममत्व न रखना ही शौच धर्म है। शौच धर्म पालन से मन की शुद्धि होती है। शौच का पालन करने पर लोभ रहित होते हैं।

सत्य धर्म – सत्यमेव जयते उक्ति ही इसका अर्थ स्पष्ट कराता है। सच्चा, वास्तविक, ईमानदार, निष्ठा, निष्कपट, व्यवहार शुद्धता, सत्य बोलना ये सभी सत्य धर्म में लीन हो जाते हैं। सत्य धर्म के विरोध करने पर 'मौनं सर्वार्थसाधनम्' का तत्व पालन करना चाहिए। इसके आगे 'मौनिन: कलहो नास्ति'- मौनी से हम कभी भी झगड़ा नहीं कर सकते। 'संतां साधूनां हितभाषणं सत्यंम्' - ऐसे 'सर्वार्थ सिद्धि' ग्रंथ में कहा गया है। इसका अर्थ मुनि या साधु और उनके भक्ति करनेवाले भक्त के साथ कभी भी अहित या झूठ बोलना अधर्म है। हितकर और सत्य बोलना ही सत्य धर्म परिपालन है।

संयम धर्म- संयंम धर्म का अर्थ है प्रतिबन्ध, नियंत्रण और मन की एकाग्रता है। इसमें इंद्रिय संयम और प्राणी संयम नामक दो प्रकार हैं। पंचेन्द्रियों को काबू में रखना इंद्रिय संयम है तो जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम है। संयम के बिना मनुष्यपशु बन जाता है। संयम धर्म का पालन करने वाले लोक में विरले ही हैं। मूर्ख संयमी नहीं हो सकते अथवा संयमी कभी मूर्खनहीं हो सकते।

तप धर्म- तप का अर्थ है कर्म शत्रुओं का नाश करना है। इच्छाओं से जन्मेआकांक्षाओं का दमन करना, मन में उठनेवाले तरंगों को काबू में रखने की क्रिया को तप के नाम से जाना जाता है। तन और मन पर होने वाले असुविधाओं को उपवासादि नियमों द्वारा नियंत्रण में

रखनेवाले क्रियाओं को तप मानते हैं। मोक्ष मार्ग पर बाधा बने कर्मों का नाशि सिर्फ तपस्यासे ही दूर कर सकते हैं। मनोविकार भोग और राग से मुक्त होना ही उत्तम तप माना गया है। स्वाध्याय की प्रक्रिया को यानी धर्म ग्रंथों के अध्ययन को भी उत्तम तप माना गया है।

त्याग धर्म- मनोकामनाओं को निग्रह कर काम, क्रोध और राग-भोगों से दूर रहना ही त्याग धर्म कहा गया है। अहंकार, अपनत्व, ममकार आदि आकर्षणों से दूर रहकर दान-धर्म करते हुए, परोपकार के मार्ग में अग्रसर होना ही उत्तम त्याग धर्म है। अशुभ क्रियाओं के कारण जन्में दुर्विचारों से दूर रहकर सज्जन बनकर सात्विक जीवनयापन करना ही त्याग धर्म है। जीवन के अंत में दीक्षा लेकर मुक्ति की राह पर चलना ही उत्तम त्याग धर्म है।

आकिंचन्य धर्म- इस दुनिया के किसी भी वस्तु पर मेरा अधिकार नहीं है। परिग्रह और बाह्य आकर्षणों से मुक्त होकर मुझे इतना ही काफी है ऐसा सोचना उत्तम आकिंचन्य धर्म माना जाता है। गृहस्थ को धन, धान्य और अन्य संपत्तियों का अनावश्यक संग्रह न करते हुए जीवन के लिए अनिवार्य वस्तुओं को मात्र ग्रहण करना चाहिए। धार्मिक क्रिया कलापों में सेवा करते हुए सरल और सात्विक जीवन करना चाहिए। इसी जीवन विधान को आकिंचन्य धर्म कहा गया है।

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म – विवेचना पथ पर शील चारित्र गुणों का पालन करते हुए स्वदार संतोषी होकर अन्यों को मात्र, पित्र और भ्रात्र भाव से देखना ही उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है। भगवद् भक्ति के आत्म ध्यान में अधीन रहकर सदा ध्यान और अध्ययन में रहते हुए सरल सात्विक आहार पान पद्धतियों को अपनाना ब्रह्मचग्र धर्म की विशेषता है। शील पालन कर काम भावनाओं को त्याग कर तप वैराग्य जीवन को अपनाना ही ब्रह्मचर्य धर्म माना गया है।

इन दश धर्मों के आचरण करते हुए जैन धर्मावलंबी क्षमावाणी नामक एक पर्व का आचयरण करते हैं। इस विशेष दिन में परस्पर क्षमा याचना करते हैं। जाने अनजाने दैनंदिन जीवन में हुए गलतियों पर सब से परस्पर क्षमा मांगना और सब को क्षमा कर स्नेह भावना को अपनाना इस क्षमावाणी दिन की विशेषता है।

आत्म गुणों की परिकल्पना – जैन आगम साहित्य में आत्म के गुणों के रंगो देखने का प्रयत्न किया गया है। जैनागम शास्त्रग्रंथों में आत्मा के गुणों लेश्या कहा गया है। इनके अनुसार पाप और पुण्य के लिए कारण राग-द्वेष भावनाओं से आत्मा के ऊपर होने वाले परिणामों को रंगों से पहचानने का प्रयत्न किया गया है। आत्मा के ऊपर होने वाले इन परिणामों को अशुभ लेश्या और शुभ लेश्याओं के रूप में देखा गया है। कृष्ण, नील, कपोत और लेश्याओं को अशुभ और पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यओं को शुभ मानते हैं। आत्माके साथ इन लेश्याओं का मिलन होने पर रंग, स्वाद, रसणेन्द्रिय और स्पर्शनेद्रियों के द्वारा इनका प्रभाव मनुष्य में परिमार्जित होने लगते हैं।[6]

अशुभ माने जाने वाले **कृष्ण लेश्यावाले** कठोर, तीक्ष्ण, हिंस्र, निर्दय होने के साथ-साथ अपने मन वचन काय से इंद्रियों को नियंत्रण में नहीं रख सकते। **नील लेश्यावाले** कट्टा गुणवाले होते हैं, जैसे क्रोध, जलन, अज्ञानी, द्रोह, दुराशा, असंयम, निर्लज्ज, भोग लालसा, द्वेश, दुराचार, बेजिम्मेदार, पापकार्य करके भी सुखानुभव के पीछे दौड़नेवाले, दुष्ट, हिंसा रसानुभवी होते हैं। **कपोत लेश्यावाले** संवाद और बर्ताव में अप्रामाणिक, सीधी बात न करनेवाले, गलत रास्ते पर ले जानेवाले चोर, संप्रदाय पालन न करनेवाले, अधम, दुःखदायी और असह्य बात करनेवाले और मात्सर्य गुणवाले होते हैं[8]

शुभ माने जाने वाले **पद्म लेश्यावाले** विनयशील, स्थिरचित्त, तहकीकात यानी रहस्य विषयों के प्रति आसक्त, अनुशासन और संयम गुणवाले, अध्ययनरत, कर्तव्यनिरत, न्याय विधिनियमों के गौरव परिपालक, निषिद्ध पदार्थों से दूर रहनेवाले, श्रेष्टता की ओर श्रमपूर्वक क्रियाशील होते हैं। **पीत लेश्यावाले** बहुत की कम क्रोधवाले, अहं, कपट और आशा रहने पर भी उनपर काबू रखकर प्रशांत मनवाले होते हैं। वे अपने अध्ययन और कर्तव्य पालन में निष्ठावान, मितभाषी और अपने इंद्रिय निग्रह करते हैं। **श्वेत यानी शुक्ल लेश्यावाले** अपने जीवन में निरंतर विपत्ती और पाप कार्यों की चिंता भी न करनेवाले, निग्रह और ध्यानी, शांत मन, व्रत परिपालक, तपस्वी, इंद्रियों पर जीत हासिल करनेवाले और संयमी और त्यागी होते हैं।[9]

"जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं
किण्हवण्ण णामकम्मं णीलवण्ण
णामं रुहिरवण्ण णामं हालिद्धवण्ण
णामं सुक्किलवण्ण णामं चेदी"[7]

उपरोक्त षट्खण्डागम के श्लोक का अर्थ है कर्म प्रकृति ही मनुष्य के रंगों का निर्धारण करती है। मगर इस श्लोक में कपोत वर्ण का विश्लेषण नहीं हुआ है। बाकी अन्य पंच वर्णों का विश्लेषण किया गया है। इस श्लोक में कार्मण शरीर का वर्णन है। इसी कार्मण शरीर के वर्णन के समय गुणों को वर्णों द्वारा विश्लेषित करने की कोशिश की गई है। तीर्थंकरों की पंचकल्याणों के वर्णन करते समय भी कर्म के अनुसार बदलनेवाले गुण परिवर्तनों को रंगों द्वारा विश्लेषित किया गया है।

जैन संत काव्यों में जीवन तत्व का अर्थ है व्यसनमुक्त जीवन। व्यसनमुक्त जीवन का सीधा अर्थ सात्विक जीवन संबन्धित होता है। जैन संत साहित्य में धर्म का अर्थ सत्य और अहिंसा के साथ नीति-नियमों को व्रताचरण के रूप में माना गया है। जैन जीवन तत्वों में व्रताचरण को अनिवार्य माना गया है। जैन आचार संहिता श्रावकों के लिए प्रत्येक और त्याग मार्ग में चले साधुओं के लिए प्रत्येक बनाए गए हैं। इन्हीं व्रताचारण आचार नियामों के अंतर्गत जैन जीवन तत्व छिपा हुआ है। उपरोक्त आलेख में इन्हीं जैन जीवन तत्वों पर किंचित् प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

आधार ग्रंथ सूची

1. दश धर्म प्रवचन, उपाध्याय कामकुमारनन्दी पृ..सं. 13
2. दश धर्म प्रवचन, उपाध्याय कामकुमारनन्दी पृ.सं. 16
3. दश धर्म प्रवचन, उपाध्याय कामकुमारनन्दी पृ.सं. 19
4. दश धर्म प्रवचन, उपाध्याय कामकुमारनन्दी पृ.सं. 30
5. दश धर्म प्रवचन, उपाध्याय कामकुमारनन्दी पृ.सं. 45
6. प्रवचनसार, आचार्य कुंद कुंद पृसं. 50
7. त्यागश्री स्मरण संचिका, संपादक - डॉ. एम्. ए. जयचन्द्र पृ.सं. 80
8. जिनधर्म दर्पण, प्रश्नोत्तर माला, श्री सी रामचन्द्र स्याद्वादी पृ.सं. 359
9. जिनधर्म दर्पण, प्रश्नोत्तर माला, श्री सी रामचन्द्र स्याद्वादी पृ.सं. 261